National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(66): 24-27
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ० (श्रीमती) गुञ्जन शर्मा
राजकीय अध्यापिका,
चूरु (राज०)

डॉ. रमेश मालाकार
सहायक प्राध्यापक (अतिथि),
संस्कृत विभाग,पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़, बिलासपुर

Correspondence:
डॉ० (श्रीमती) गुञ्जन शर्मा
राजकीय अध्यापिका,
चूरु (राज०)

अतिप्राकृत तत्त्व और महावीरचरितम्

डॉ० (श्रीमती) गुञ्जन शर्मा, डॉ. रमेश मालाकार

अतिप्राकृत तत्त्व का परिचय -

प्राकृतिक जगत् के तथ्यों एवं अनुभवों को अतिक्रान्त करने वाले सभी तत्त्व अतिप्राकृत हैं, जिन्हें अलौकिक, लोकातिक्रान्त, लोकातिग, अतिमानुष, दिव्य भी कहा जाता है, परन्तु इनका अर्थक्षेत्र इन सबसे व्यापक है। यह इन सभी शब्दों के अर्थ अपने में अन्तर्निहित करते हुए अंग्रेजी के 'सुपर नेचुरल' के रूप में भी प्रयोग किया गया है।

अतिप्राकृत तत्त्व विषयक परिकल्पनाएँ वस्तुतः किसी जन समुदाय की विश्व सम्बन्धी सामान्य धारणाओं की अंग होती हैं। संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त अतिप्राकृत तत्त्व प्राचीन भारत में विकसित इन सांस्कृतिक मान्यताओं की ही कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। अधिकांश नाटकों में ये धार्मिक तथा पौराणिक चेतनाओं की देन हैं तथा कतिपय नाटकों में लोककथाओं व लोकविश्वासों के क्षेत्र से लिए गए हैं।

संस्कृत नाटक के अंग-वस्तु, नेता व रस को चमत्कारपूर्ण व प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य के साथ नाटक की सुखान्तता भी इन्हीं तत्त्वों पर निर्भर है, अतः कहा जा सकता है कि इनका अध्ययन नाटक को नई अवगति प्रदान कर सकता है। अतिप्राकृत तत्त्व स्वरूप से रहस्यमय अतीन्द्रिय और तर्कातीत होते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी ये विश्वास अविच्छिन्न रूप से न केवल अशिक्षितों में, बल्कि शिक्षित व सभ्य माने जाने वालों में भी विद्यमान हैं।[1] इसके कारण हैं-

1. जीवन के अनेक ऐसे रहस्यमय पहलू व असमाधेय समस्याएँ हैं, जिनके कारण विज्ञान की चुनौतियों के बावजूद आज ये विश्वास जीवित है।
2. जीवन की अनिश्चितताएँ तथा आकस्मिक अप्रिय घटनाएँ मनुष्य को इन तथ्यों के प्रति विश्वास को प्रेरित करती हैं घटनाओं के परिचित व प्रत्याशित क्रम के उलटफेर होने पर मनुष्य अतिप्राकृत तत्त्वों में उसकी व्याख्या ढूँढता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्वास उक्त स्थितियों से उत्पन्न निराशा के निराकरण व जीवन के प्रति आस्थापूर्ण संतुलित दृष्टिकोण बनाने में सहायक होते हैं।[2] इन विश्वासों में मनुष्य की इच्छापूर्ति तथा कल्पना विलास की प्रवृत्ति भी प्रकट हुई है ?[3] यहाँ जीवन में इच्छाओं और आशाओं का विघात होने पर मनुष्य एक काल्पनिक संसार में उसकी क्षतिपूर्ति का यत्न करता है। ये विश्वास उसे प्राकृतिक बन्धनों से उन्मुक्ति प्रदान कर उसकी कल्पना को निर्बाध विचरण का अवसर देते हैं।

मानव समाज की नैतिक एवं आध्यात्मिक विचारधाराओं से भी अतिप्राकृत तत्त्वों का उद्भव हुआ है। ये तत्त्व सामाजिक संस्थाओं के नियम-विधानों एवं व्यक्ति के नैतिक आचरण के अलौकिक प्रवर्तक या नियामक के रूप में सामाजिक संगठन के संरक्षण का कार्य करते हैं।[4] साहित्य न शून्य की उपज है, न ही साहित्यकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति। यदि ऐसा होता तो वह व्यक्ति की सृष्टि बनकर रह जाता, उसका समष्टि द्वारा रसास्वादन नहीं होता। लेखक स्वतंत्र होते हुए भी एक सीमा तक अपनी संस्कृति की सर्वमान्य विचारणाओं, विश्वासों और अभिनिवेशों का भागीदार होता है

और उसकी कृतियों में यह किसी न किसी रूप में प्रतिफलित होता है। धर्म, दर्शन, पुराकथा व लोककथा आदि सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न अंग नानाविध अतिप्राकृत विश्वासों से परिपुष्ट रहे हैं। ये विश्वास वस्तुत: प्राचीन मनुष्य की विश्व दृष्टि व सृष्टि की दैवी शक्तियों के साथ अपने सम्बन्धों के अन्वेषण व अवधारणा की पद्धतियाँ हैं। ये पद्धतियाँ मानव ज्ञान के विकास की विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों में अस्तित्त्व में आती हैं और जब तब ये परिस्थितियाँ अस्तित्त्व में आती हैं और जब तक ये परिस्थितियाँ रहती हैं, उनसे सम्बद्ध पद्धतियाँ भी विभिन्न रूप में जीवित रहती हैं तथा उनके गुणात्मक परिवर्तन के साथ उनमें परिवर्तन हो जाता है। वे मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के विभिन्न पक्षों के साथ साहित्य, कला मादि उसके सांस्कृतिक अध्यवसायों में भी निरन्तर अभिव्यंजित होती हैं। पद्धतियों के रूढ़ हो जाने पर साहित्य में अभिव्यक्ति भी रूढ़ व पारम्परिक हो जाती है। कोई साहित्य जिस समाज और युग में रचा जाता है, उसकी सांस्कृतिक परम्पराओं और वैचारिक उपलब्धियों से स्वयं को मुक्त नहीं रख सकता। पिछली दो शताब्दियों में विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति से पहले तक संसार के सभी भागों में मानव चिन्तन के विभिन्न क्षेत्र अतिप्राकृत धारणाओं से अनुप्राणित थे, अतः यह स्वाभाविक ही है। कि उस काल में प्रणीत साहित्य के विभिन्न रूपों में भी इन धारणाओं की विविध सौन्दर्यमयी अभिव्यक्तियाँ हुई हों।

साहित्य में अतिप्राकृत तत्त्वों का प्रयोग धार्मिक व पौराणिक अवस्थाओं की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, अपितु कवियों ने उसका कलात्मक उद्देश्यों की दृष्टि से भी संयोजन किया है। कहीं वे कथानक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में वैचित्र्य और कौतूहल का आधान करते हैं, कहीं पात्रों के मानवीय गुणों को अतिरंजित कर उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाते हैं, तो कहीं सांस्कृतिक मूल्यों को चामत्कारिक रीति से रेखांकित करते हैं। कभी वे कृति की आंतरिक संरचना के अविभाज्य अंग बनकर प्रकट होते हैं, तो कभी उनका स्थान बाह्य व गौण होता है। अनेक स्थानों पर उनका विनियोग किन्हीं तथ्यों की सूचना मात्र देने के लिए किया जाता है। कहीं वे लेखक की संज्ञान व सोद्देश्य कला के अंग होते हैं, तो कहीं उनका प्रयोग मात्र अलंकरण के रूप में होता है। कहीं उनके विधान में कवि की मौलिक सूझबूझ व संवेदनशील दृष्टि झलकती है, तो कहीं वे साहित्यिक रूढ़ियों से अधिक नहीं होते। कहीं वे सृष्टि व मानव जीवन को संचालित करने वाली निगूढ़ शक्तियों का संकेत देते हैं, तो कहीं मनुष्य और दैवी शक्तियों के बहुविध सम्बन्धों की अभिव्यक्ति करते हैं। ये अतिप्राकृत तत्त्व यों तो काव्य के प्रायः सभी रूपों में मिलते हैं, पर नाटकों में उनका प्रयोग अधिक जीवन्त व प्रभावशाली रूप में हुआ है।

संस्कृत नाटक धार्मिक व काल्पनिक पृष्ठभूमि में लिखे गए, जिनमें अतिप्राकृत शक्तियाँ मनुष्य की प्रतियोगी के रूप में चित्रित नहीं हैं और मनुष्य शेष सृष्टि से विलग नहीं, अपितु उनसे नानाविध रागात्मक सम्बन्धों से बंधा है, अतः यह स्वाभाविक है कि मानव के कार्यकलापों में दैव शक्ति रुचि ले और उससे भी आगे बढ़कर सुख-दुःखों में भागीदार हो।

संस्कृत नाटकों पर यह आरोप लगाया जाता है कि अतिप्राकृत तत्त्वों के प्रयोग व जीवन के प्रति नीतिवादी दृष्टिकोण के कारण उसमें जीवन की यथार्थता की उपेक्षा हुई है तथा दुःखान्त पक्षों की ओर ध्यान नहीं दिया गया[5] लेकिन संस्कृत नाटक सदैव सच्चिदानंद की प्राप्ति कराता है। वह पाश्चात्य नाटककारों के समान जीवन के उद्दाम संघर्षमय रूप के चरित्र को लक्ष्य न मानकर प्रशान्ति, स्थैर्य, आनन्द व मंगल के विधान को अपना लक्ष्य मानता है, परन्तु ऐसा नहीं है कि वे जीवन के कष्टप्रद व क्लेशदायक पक्षों से अछूता है। अपने लक्ष्य के लिए बड़ी से बड़ी विपत्ति में से भी नाटककार नायक को उक्त लक्ष्य तक पहुँचा देता है। इस प्रक्रिया में यदि मृत्यु को भी जीवन में बदलना पड़े तो भी वह नहीं हिचकिचाता।[6] संस्कृत नाटक में अतिप्राकृत तत्त्वों का प्रयोग तथा उसकी आदर्शवादी सुखान्त प्रवृत्ति संस्कृत नाटककार की सांस्कृतिक जीवन दृष्टि के अंग हैं और ये उन धार्मिक, पौराणिक, आध्यात्मिक और नैतिक आग्रहों की सीमाएँ हैं, जिन्हें अपनाना उसके लिए अनिवार्य था।

संस्कृत के अनेक रचनाकारों ने अतिप्राकृत तत्त्वों का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। इसी क्रम में भवभूति ने भी अतिप्राकृत तत्त्वों को अपनी रचना में विन्यस्त किया है। जैसा कि सर्वविदित है- 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' भवभूति की प्रशंसा में कही गई यह उक्ति निराधार नहीं है। मानव हृदय के तीव्र भावोद्वेगों व विक्षुब्ध अन्तरात्मा की गम्भीर वेदनाओं का जैसा मार्मिक चित्रण भवभूति ने किया, वैसा संस्कृत के किसी भी अन्य कवि ने नहीं किया। भवभूति की सम्पूर्ण कीर्ति का आधार उनके तीन नाटक हैं। रामकथा आधारित 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित' तथा कविकल्पित प्रणयकथा 'मालतीमाधव'। रचनाक्रम की दृष्टि से महावीरचरित प्रथम व उत्तररामचरित अंतिम कृति है। नाटक के क्षेत्र में भवभूति नूतन दृष्टि लेकर अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपनी कृतियों में अनेक प्रयोग किए, जो उनकी मौलिक एवं स्वतंत्र प्रतिभा के परिचायक हैं। इन नवीन प्रयोगों में उन्होंने अतिप्राकृत तत्त्वों का भी अपनी रचनाओं में विन्यास किया है, जिससे कथा अधिक जीवन्त एवं प्रभावशाली बन गई।

महावीरचरित की वस्तु व पात्र दोनों की योजना में अतिप्राकृतिक तत्त्वों का समावेश हुआ है। एक तो रामकथा स्वयं ही अनेक अतिप्राकृत तत्त्वों से पूर्ण है, फिर कथा की पौराणिक पृष्ठभूमि व वातावरण ने भी नाटककार को इन तत्त्वों की योजना का यथेच्छ अवसर दिया है। कथा का स्वरूप देश, काल व परिवेश जितना प्राचीन व दूरवर्ती होता है, लेखक को असंभव और अयथार्थ की योजनाओं का उतना ही अधिक अवसर सुलभ रहता है। अतिप्राकृत कल्पनाएँ या तो धर्म, दर्शन और पौराणिकता का सम्बल ग्रहण करती हैं या लोककथाओं का, जिनकी घटनाएँ व पात्र मनुष्य की स्वच्छन्द व अबाधित की अभिव्यक्ति होती हैं।

अतः नाटककार ने प्रस्तावना में ही बता दिया कि इस नाटक में अप्राकृत (अलौकिक व असाधारण) पात्रों में स्थित वीररस आधार की मित्रता के अनुसार सूक्ष्म व प्रस्फुट भेदों में विभाजित किया गया है। नाटक के अनेक पात्र किसी न किसी दृष्टि से स्वाभाविक है कि उनके कार्यकलापों में अलौकिकता का पुट हो। अप्राकृत हैं, भवभूति ने मुख्यतः वीर व अद्भुत रस में विशेष अभिरुचि के कारण रघुनन्दन के चरित्र को नाटक की विषयवस्तु के रूप में ग्रहण किया है। संस्कृत नाटकों में अद्भुत रस प्राय: अतिप्राकृत तत्त्वों पर आश्रित होता है, अत: नाटककार प्रारम्भ से ही नाटक में इन तत्त्वों का विचार लेकर चला है, यह अनायास माना जा सकता है।

भवभूति ने कथावस्तु में जिन अतिप्राकृत तत्त्वों का विन्यास किया है, वे अधिकतर रामायण पर आधारित हैं, तथापि उनके नाटकीय विनियोग में उन्होंने अपनी मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है। मूल रामायण के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसंग नाटक में स्वरूप, क्रम, स्थान व उद्देश्य की दृष्टि से काफी परिवर्तित हो गये तथा कथा और पात्रों की प्रकृति के अनुसार नाटककार ने कुछ नवीन अतिप्राकृत तत्त्वों की उद्भावना की है।

प्रथम अंक की घटनाएँ महर्षि विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से सम्बन्ध रखती हैं। महर्षि द्वारा आयोजित यज्ञ में भाग लेने हेतु राजा जनक के अनुज कुशध्वज सीता और उर्मिला के साथ आए, राम और लक्ष्मण यज्ञ की रक्षा में नियुक्त हैं। इसी समय रावण का दूत राक्षस सर्वमाय रावण का संदेश लेकर आता है, जिसमें उसने सीता के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा है। इसी पृष्ठभूमि में प्रथम अंक में नाटककार ने कुछ अतिप्राकृत प्रसंगों की योजना की है। अहल्योद्धार[7], तारकावध[8], दिव्यास्त्रदान[9], ध्यानद्वारा शिव धनुष की उपस्थिति[10], सुबाहु और मारीच का सिद्धाश्रम पर आक्रमण करने पर राम द्वारा सुबाहु का वध और मारीच का अति दूर फेंक देना आदि[11]।

इन प्रसंगों को राम के अप्राकृत वीर व्यक्ति की सिद्धि के अंग के रूप में विन्यस्त किया है, साथ ही राम के सभी अलौकिक कार्य रावण के मंत्री माल्यवान् को एक चुनौती के रूप में प्रतीत होते हैं, जिन्हें राम-रावण विरोध की भूमिका के रूप में निबद्ध कर नाटकीय उद्देश्य से संयोजित किया है।

रामायण में यह कैकेयी की मानवोचित दुर्बलता का सूचक हैं, वही नाटक में अतिप्राकृत कल्पना से मानवीय पक्ष की क्षति हुई है, अत: इस कल्पना को नाटकीय दृष्टि से समीचीन मानते हुए भी मानव चरित्र की व्याख्या की दृष्टि से संगत नहीं कह सकते।

पंचम अंक में दनुकबंध की चिता से दिव्यपुरुष की उत्पत्ति प्रसंग में दनु राम को बताता है कि वह उन पर आक्रमण के लिए माल्यवान् द्वारा दण्डकारण्य भेजा गया तथा साथ ही सूचित करता है कि माल्यवान् ने बाली को उनके वध के लिए नियुक्त किया है। कबन्ध व बाली दोनों को माल्यवान् द्वारा प्रेरित बताकर मूलकथा को अपने नाटकीय उद्देश्य के अनुसार ढाल दिया है। दुंदुभि राक्षस की पर्वताकार अस्थि संचय को पाँव के अंगूठे से दूर फेंकना[15], समुद्रपार पाषाण सेतु निर्माण[16], राम-रावण युद्ध में दिव्य शक्ति प्रयोग आदि प्रसंगों का प्रयोजन राम के अलौकिक व्यक्तित्व को दर्शाना है।

सप्तम अंक में शरीरधारिणी लंका व अलका नगरियों के द्वारा सीता की अग्निपरीक्षा, देवों द्वारा उसके अभिनन्दन तथा विभीषण के राज्याभिषेक की सूचना लेखक की स्वयं की उद्भावना है। राम द्वारा पत्नी, भाई व इष्टमित्रों के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या लौटने के प्रसंग में पुष्पक विमान को अनवरुद्ध गति, इष्ट दिशा व मनोरथानुकूल चेष्टा वाला अलौकिक बताना[17], मार्ग में अगस्त्य ऋषि के आश्रम आने पर राम व अन्य लोगों के द्वारा विमान से ही प्रणाम करने पर अशरीरिणी वाणी के रूप में ऋषि का आशीर्वाद है। सुनना[18], विश्वामित्र आश्रम के ऊपर से जाते समय राम को ऋषि का संदेश प्राप्त होना[19] तथा विश्वामित्र की आज्ञा से दिव्य ऋषियों द्वारा राम का राज्याभिषेक सम्पन्न करना एवं इन्द्र द्वारा उसके अनुमोदन में आकाश से पुष्पवृष्टि करना आदि अलौकिक प्रसंगों से कथा विन्यस्त है।

महावीरचरित में अतिप्राकृत पक्षों का चित्रण या तो अतीत घटनाओं के रूप - में हुआ है या उसका विधान नेपथ्य से किया गया अनेक अतिप्राकृत प्रसंगों की विष्कम्भक में सूचना मात्र दी गई है, अतः पात्रों का अतिमानवीय पक्ष सामाजिक की दृष्टि से दूर ही रहता है। नाटककार ने राक्षस, देवता, किन्नर, दिव्य ऋषि आदि मानवेतर पात्रों की भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में योजना की है, पर गुणधर्मों की दृष्टि से वे अधिकतर मानव रूप में ही उपस्थित होते हैं। राम एक महान् वीर अलौकिक पुरुष हैं एवं भवभूति का लक्ष्य राम की महावीरता के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करना है। वे वीर के साथ विनयी, तेजस्वी होने के साथ क्षमाशील हैं। ताड़का, सुबाहु, बाली, रावण आदि दुर्दान्त राक्षसों का वध उसकी अतिमानवीय शक्ति का सूचक है। राम की अलौकिकता अनेक मानवत्व का चरम विकास है। परशुराम रामायण से कुछ भिन्न रूप में अंकित हैं। वे माल्यवान् के प्रेरणा से राम को दण्ड देने मिथिला जाते हैं। शिव के शिष्य, इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार, सहस्त्रार्जुन का वध, कार्तिकेय जय, क्रौंच पर्वत भेदन आदि अलौकिक प्रसंग पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं।

रावण का मस्तक काटकर शिव को भेंट करना, कैलाश पर्वत उठा लेना, राम-रावण युद्ध वर्णन में कटे मस्तक पर पुनः मस्तक निकल आना आदि सभी अतिप्राकृत तथ्य सूच्य रूप में आये हैं। नाटक में वह अहंकारी, कामुक, उद्धत और अदूरदर्शी व्यक्ति के रूप में हैं, उसका अतिमानवीय पक्ष केवल उसकी अहंकारोक्तियों में व्यक्त हुआ है।

पुष्पक विमान से जाते हुए पृथ्वीतल से ही संदेश प्रेषण में विश्वामित्र का तथा अपने आन्तर चक्षुओं से राम वनगमन में शूर्पणखा के हाथ का पता लगाना[20] वशिष्ट के अतिप्राकृत व्यक्तित्व का द्योतक है। नाटक में दोनों का चरित्र अधिकतर मानवीय रूप में अंकित है। बाली एवं हनुमान के व्यक्तित्व निर्माण में नाटककार ने स्पष्टत: रामायण की अतिमानवीय कल्पनाओं का उपयोग किया है। वासव, चित्रस्थ, मातलि, किन्नर - मिथुन जैसे कुछ दिव्य पात्र भी हैं, जिनकी भूमिका नगण्य है। शूर्पणखा में परकाया प्रवेश की अलौकिक शक्ति है तथा सप्तम अंक में लंका और अलका नगरियों का मानवीकरण सूचनाएँ मात्र देने तक सीमित है।

नाटक में यदि अतिप्राकृत लोक विश्वासों की बात की जाए तो वाम नेत्र स्फुरण को अशुभ निमित्त बताना[21], रावण की मृत्यु व कुल नाश उसके दुष्कर्मों का विपाक कहना[22] तथा भवितव्य होकर ही रहता है, टाला नहीं जा सकता इस भाग्यवादी विश्वास के आधार पर रावण के पतन और विनाश की व्याख्या की गई है। रस की दृष्टि से नाटक में आये अतिप्राकृत तत्त्व अद्‌भुत रस की निष्पत्ति कराते हुए अंत में अंगी 'वीर रस' के प्रति अंग बन गए, क्योंकि नाटककार का अंतिम लक्ष्य तो राम व अन्य पात्रों की महावीरता को उजागर करना है।

निष्कर्ष –

भवभूति रचित 'महावीरचरितम्' में आए अधिकांश अतिप्राकृत प्रसंग व पात्र रामायण से गृहीत हैं, केवल उनके विनियोग की पद्धति में अंत है। भवभूति ने उन्हें राम-रावण विरोध की संघर्षात्मक कथा का अंग बनाकर नाटकीय औचित्य प्रदान करने का प्रयत्न किया है। इस नाटक में परकाय प्रवेश के रूप में एक विशिष्ट अतिप्राकृत तत्त्व का प्रयोग किया गया है, पर उसमें नाटककार को विशेष सफलता नहीं मिली है।

पौराणिक कल्पनाओं के प्रयोग से इस नाटक का बहिरंग अनेक स्थलों पर अवास्तविक हो गया है, पर उसका अन्तरंग वास्तविक और मानवीय ही है। अधिकांश अतिप्राकृत तत्त्व कवि की कला के माध्यम या साधन मात्र हैं, जिनके द्वारा उसने मानव हृदय के भावसत्यों में गहराई से पैठने का यत्न किया है। ये उनकी कृति के बाह्य आवरण मात्र हैं, जिनके अन्तस्तल में उन्होंने मानव चरित्र और उसके भाव-सत्यों का ही विधान किया है।

संदर्भ गंथसूची –

१. मालतीमाधवम्- भवभूतिः, जीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्यः, सिद्धेश्वर- यन्त्रालयः, 1894

२. संस्कृतसाहित्य का इतिहास – देवर्षि कलानाथ शास्त्री साहित्यागार

३. मालतीमाधवम्-भवभूतिः, संपादक – मङ्गेशरामकृष्णतेलङ्ग, तुकारामजावजी, 1915

४. पातञ्जलयोगदर्शनम् (भाष्य-हिन्दीव्याख्यासहितम्), पतञ्जलिः, मोतीलाल-बनारसीदासः, ज्योतिषप्रकाश-मुद्रणालयः, 1971

५. दशरूपकम् – धनञ्जयः, प्रकाशक – तुकारामजावजी, निर्णय-सागर-यन्त्रालयः, 1897

६. पातञ्जल-योगदर्शनम्-भाष्यसहितम् - पतञ्जलिः, राष्ट्रियसंस्कृत-विश्वविद्यालयः-तिरुपतिः

७. रामायणम् – वाल्मीकिः, तुकारामजावजी, निर्णयसागर-यन्त्रालयः, 1902

सन्दर्भग्रन्थ -

[1] अर्नेस्ट हेकल - दि रियल ऑफ द यूनिवर्स, पृष्ठ-207

[2] टॉलकॉट पार्सन्स का निबन्ध मोटिवेशन ऑफ रिलीजियस बिलीफ एण्ड बिहेवियर, पृष्ठ-3

[3] एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साईन्सेस में 'फाकलोर' पर रुथ बेनिडिक्ट का निबन्ध, पृष्ठ-292

[4] हॉकिन्स टाइप्स ऑफ फिलासफी, पृ. 31-33

[5] द कीथ संस्कृत ड्रामा, पृ. 160

[6] हर्ष ने नागानन्द में मृत जीमूतवाहन व अस्थिशेष नागों को पुनर्जीवित कर नाटक को सुखान्त बनाया है।

[7] तस्याः पाप्मना शरीरमन्धतामिस्त्रमभ्ययात् । सेयमद्य रामभद्रतेजसा तस्मादेनसो निरमुच्यत। - महावीरचरित 1, पृ. 20

[8] महावीरचरित, 1.35

[9] महावीरचरित, 1, पृ. 31, 43, 44, 48, 49, 50

[10] महावीरचरित, 1.53

[11] महावीरचरित, पृ. 2.1

[12] महावीरचरित, 4, पृ. 119 120

[13] वहीं, 4, पृ. 150

[14] वहीं, 4, पृ. 41

[15] राम- नन्वेहि (पादांगुष्ठेन क्षिपति) वहीं, 539, पृ. 188

[16] वहीं, 6, पृ. 204-205

[17] अयं च पुष्पकनामा स विमानराजः असंरुद्धगतेरिष्टप्रवतेर्वशवर्तिनः। मनोरथस्यानुगुणं सर्वदा यस्य चेष्टितम् ।। महावीरचरित, 7.7

[18] रामः (आकर्ण्य) कथमशरीरिण्या गिरा परमनुगृहीतो महामुनि-वन्दारुः। पृ. 224

[19] महावीरचरित, 7, पृ. 228 महावीरचरित, 7,

[20] अरुन्धती - वत्से, अलं शंकया। आर्यामिश्रैरयमर्थस्तदैवान्तरेण चक्षुषा साक्षात्कृतः।

[21] माल्यवान् (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयन्) किं नो विधिरिह वचनेऽप्यक्षमो दुविपाकः। महावीरचरित, 6.7

[22] यदुचितममुना ते राक्षसानां विनेत्रा, निहितमयमशेषः कर्मणस्तस्य पाकः। महावीरचरित, 7.1